International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 9 No.6 July-Aug 2022

अदम्य जिजीविषा के कवि : अज्ञेय

डॉ. विनय कुमार शुक्ला
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी), शासकीय रामानुज प्रताप सिंहदेव
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैकुण्ठपुर, कोरिया (छ.ग.)
Corresponding Author- डॉ. विनय कुमार शुक्ला
DOI- 10.5281/zenodo.14506082

सारांश

हिन्दी साहित्य में 'अज्ञेय' नाम का एक खास आकर्षण है। हिन्दी कविता के संदर्भ में कोई भी बात बिना अज्ञेय के मुकम्मल हो ही नहीं पाती। वे इसलिए भी महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं कि उनकी काव्य–यात्रा में हमारे युग–परिवेश की लगभग सभी चिंताएँ, समस्याएँ और विशेषताएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं, साथ ही नैतिक अंतर्द्वन्द्व भी। इस कारण वे समय और काल की सीमा पार कर जाते हैं। उनका वक्त सन् संवत् से बँधा समय नहीं बल्कि किसी भी उन बडे रचनाकार कलाकार का समय है जो वटवृक्ष सा होता है। नए तने, नई शाखाओं, नये पत्तों में फूटता धीरे–धीरे पूरी हरियाली में बदल जाता है। अज्ञेय जी के साथ भी ऐसा ही हुआ। वे कवि, कथाकार, निबन्धकार, उपन्यासकार, साहित्यकार, पत्रकार और सबसे आगे सच्चे सृजनकार थे।[1] उनके रचनाकर्म में सौंदर्यबोध और शिवत्व–वोध दोनों इतनी तीव्रता और गहराई से संयुक्त है कि उन्हें एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। इनके पीछे सृजनात्मकता के केन्द्र में समग्र मानव की चिंता–संवेदना है।

प्रस्तावना

अज्ञेय का हिय हारिल पक्षी परंपरा और आधुनिकता के संतुलन में उल्लासपूर्वक अड़ा हुआ है। जहाँ परंपरा की स्मृति यह भरोसा देती है कि इस जीवन में भी उल्लास के क्षण समाहित हैं। अज्ञेय कवि के रूप में जीवन के आस्वादन में विश्वास करते हैं–

इस सूखी दुनिया में प्रियतम
मुझको और कहाँ रस होगा?
शुभे! तुम्हारी स्मृति के सुख से
प्लावित मेरा गानस होगा।[2]

उनकी रचनाओं में पूरा युग बोलता है। बकौल निर्मल वर्मा अपनी मानसिक संरचना में अज्ञेय बहुत हद तक बंगाल रेनेसेन्स के बुद्धिजीवियों के उत्तराधिकारी रहे हैं, पश्चिमी भावबोध के प्रति एक खुला मोह और आकर्षण, किंतु अपनी जातीय परंपरा और भाषा के प्रति गहन स्तर संवेदनशील भी।[3] अपनी रचना प्रक्रिया के दौरान अज्ञेय काव्य, साहित्य, विचार और जीवन के स्तर पर बनी–बनाई रुढ़ियों को तोड़ते हैं। आधुनिक सांस्कृतिक चेतना उन्हें व्यक्ति स्वातंत्र्य की हिमायती बनाती है। व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसकी आत्मशक्ति की तलाश में वे कितनी बार कितनी नावों में सफर करते हैं जहाँ–

कितनी दूरियों में कितनी बार
कितनी डगमग नावों में बैठकर
मैं तुम्हारी ओर आया हूँ
ओ मेरी छोटी–सी ज्योति।[4]

यह छोटी सी ज्योति मानव जीवन को और खुद के देखने जाँचने की यह दुर्निवार आकांक्षा है जो कवि को यह आत्मविश्वास देती है कि 'मैं मरुँगा सुखी, मैंने जीवन की धज्जियाँ उड़ाई हैं।' अज्ञेय आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया के दौरान शाश्वत मूल्यों की तलाश करते हैं। नवजागरण कालीन चेतना के मूल तत्त्व स्वतंत्रता, समानता और वन्धुत्व के भाव उनकी काव्य–यात्रा के सहचर है जहाँ–

श्रेय नहीं कुछ मेरा
मैं तो डूब गया था स्वयं शुन्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था;

वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।[5]

अपने आप को उस महाशून्य को सौंपने और खुद को उसके प्रति विगलित करने का भाव अज्ञेय के यहाँ ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानकर मनुष्य में ईश्वर की तलाश भी है। वे ईश्वर और धर्म दोनों को मानव सत्ता हेतु स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार अगर धर्म रचनात्मक कर्म है, कर्म जीवन है तो मैं क्षण–क्षण कर्म करता हुआ कर्म की कसौटी करता हुआ, विकल्पों में से एक का वरण करता हुआ, ईश्वर को भी क्षण–क्षण रचता चलता हूँ। 'वह' वहाँ भी ईश्वर होगा क्योंकि वह है तो कहाँ नहीं है, कहाँ नहीं होगा? पर मेरा वह उतना ही होगा जितना मैं उसे रखूँगा। जितना वह मेरा होता है उतना ही मैं उसका होता हूँ। इस तरह अज्ञेय ने ईश्वर और धर्म को आज के समय में सार्थक दृष्टि प्रदान की। उनका ईश्वर और धर्म बोध संसार व समय निरपेक्ष नहीं वरन् एक प्रकार से सांसारिक संबंधों की खोज का ही परिणाम है। ईश्वर और धर्म को शाश्वत मूल्य के रूप में स्वीकार करके अज्ञेय ने आज के जड़वादी, अन्धकारयुक्त समय में चेतना का नया प्रकाश दिया।[6]

सर्वशक्तिमान ईश्वर में अज्ञेय की आस्था साधारण जन–मन से की गहरे जुड़ती है। जहाँ वे जीवन को उसके विविध आयामों के साथ ग्रहण करते हैं। वेदना का तत्त्व उनकी चेतना को गतिशीलता प्रदान करता है। वे सबके साथ जीते हैं, कष्ट पाते है, यातनाएँ सहते है, साथ ही यह विश्वास भी प्रकट करते हैं–

यह जो मिट्टी गोड़ता है
कोदई खाता है और गेहूँ खिलाता है
उसकी मैं साधना हूँ
यह जो मिट्टी फोड़ता है
मड़िया में रहता और महलों को बनाता है
उसकी मैं आस्था हूँ।[7]

किसी ने अज्ञेय को आधुनिक भावबोध का अग्रदूत कहकर उनके सौंदर्यबोध को रेखांकित किया है। जहाँ सौंदर्यबोध बुद्धि का व्यापार है। जिन्हें बुद्धि के तत्त्वों द्वारा पहचाना जा सकता है, एवं मानव अनुभवों का तादात्म्य जहाँ अपरिहार्य है। अज्ञेय के यहाँ कवि कर्म नए अनुभवों की नए भावों की खोज नहीं है. प्रत्युत पुराने और परिचित भावों के उपकरण से ही ऐसी नूतन अनुभूतियों की सृष्टि करना, जो उन भावों से पहले प्राप्त नहीं की जा चुकी है। वह नई धातुओं का शोधक नहीं है. हमारी जानी हुई धातुओं से ही नया योग ढालने में और उससे नया चमत्कार उत्पन्न करने में उसकी सफलता और महानता है।[8] नदी के द्वीप कविता में 'नदीं और द्वीप' के बीच का संबंध एक नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। अधिभाज्य, अप्रमेय और समाज के प्रति व्यक्ति का यह समर्पण उल्लास प्रदिप्त है जहाँ–

नदी तुम बहती चलो
भूखंड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो। यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार
से, अतिचार से
तुम बढो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर काल
प्रवाहिनी बन जाये।[9]

परंपरा की सार्थकता के प्रति निजमन का स्थिर समर्पण अज्ञेय के यहाँ वायावी न होकर ठोस भूमि पर आधारित है। यह ठोस भूमि बुद्धि पर आधारित है और निरंतर विकासशील है जहाँ बुद्धि नए–नए अनुभवों के आधार पर परिचित दृश्यों और भावों के प्रति नित नवीन उद्भावना करती चलती है। इस प्रक्रिया में अनुभव परंपरा से जुड़कर नई अर्थवत्ता प्रदान करता है। पार्थिव जगत् की समग्रता का ग्रहण उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। उसमें जीवन–रस का आचमन हाथों से नहीं होठों से करने का भाव है, इसीलिए रोजमर्रा की जिन्दगी से, लोक जीवन से और प्रकृ ति से, मानव के नए आयाम से सजीव विम्ब ग्रहण करते हैं और चालू अर्थ में आध्यात्मवादी न होते हुए भी उन बिम्बों के माध्यम से एक भीतरी वास्तविकता का बोध जगाते हैं। अज्ञेय की कविता के चार चरण दिखते हैं। पहला है विद्रोह और हताशा का, दूसरा है अपने भीतर शक्ति संचय का, तीसरा है बिना किसी आशा के आत्मदान में

सार्थकता पाने का, और चौथा है मानवीय दायित्वबोध के साथ–साथ भारतीय अस्मिता की पहचान का।[10]

अज्ञेय उन्मुक्त जीवन उल्लास के कवि हैं जहाँ साधारण मानव की आत्मशक्ति के प्रति अदम्य आस्था है। उनके यहाँ सृजन की रचनात्मकता है, जो जीवन के विविध आयामों को अपने प्रवाह में समेटती चलती है। साहित्यिक नारेबाजी के घटाटोप से दूर उनका काव्य मानव चेतना का सहज उच्छ्वास है। साथ ही उनके यहाँ व्यक्त सौंदर्यबोध के पीछे एक अर्जित आत्मविश्वास है जो तमाम तरह की भ्रांतियों से युक्त है। आज के समय में जब राजनीति और साहित्य की धुरी अपने मूल स्वभाव से खिसक गई है। इस स्थिति में अज्ञेय का रचनाकर्म मानव जीवन की अदम्य जिजीविषा के स्वर के प्रति आश्वस्त करता है। वह मानव की परिकल्पना में अर्थवत्ता के खोजी और सृष्टा हैं। बकौल अज्ञेय अर्थवत्ता की खोज जिजीविषा का एक पहलू है और अर्थ या अर्थ की चाह को अंतिम रूप से खो देना जीवन की चाह ही खो देना है। मैं जीना चाहता हूँ और अंत तक जीना चाहते रहना चाहता हूँ।[11]

यह अंत तक जीने की चाहत और बहुत कुछ कहे जाने की अकुलाहट मानव जीवन की निरंतरता के प्रति अमोघ विश्वास के तहत पैदा हुई है। जहाँ–

है, अभी कुछ और है जो कहा नहीं गया,
उठी एक किरण, धायी क्षितिज को नाप गयी,
सुख की स्थिति कसक भरी, निर्धन की नैन कोरों में काँप गयी,
बच्चे ने किलक भरी, माँ की वह नस–नस में व्याप गयी।[12]

संदर्भ :

1. आलोचना, त्रैमासिक, जुलाई–सितम्बर 2009, पृ० 62
2. सं० मिश्र विद्यानिवास – अज्ञेय, प्रतिनिधि कविताएँ एवं जीवन–परिचय,, पृ० 44
3. वर्मा निर्मल – कला का जोखिम, पृ० 112
4. सं० मिश्र विद्यानिवास मिश्र – अज्ञेय, प्रतिनिधि कविताएँ एवं जीवन–परिचय, पृ० 111
5. वही पृ० 105
6. आलोचना, त्रैमासिक, जुलाई–सितम्बर 2009, पृ० 64
7. सं० मिश्र विद्यानिवास – अज्ञेय, प्रतिनिधि कविताएँ एवं जीवन–परिचय, पृ० 81
8. अज्ञेय – साहित्य संस्कृति और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया, पृ० 58
9. सं० मिश्र विद्यानिवास –अज्ञेय, प्रतिनिधि कविताएँ एवं जीवन–परिचय, पृ० 92
10. वही पृ० 33–34
11. नवनीत, जुलाई 2010, पृ० 25
12. सं० मिश्र विद्यानिवास – अज्ञेय, प्रतिनिधि कविताएँ एवं जीवन–परिचय, पृ० 64

डॉ. विनय कुमार शुक्ला